ज्ञानविविधा
कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2025
Page No.- 380-388
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Dr. Sumit kumar
sr. Assistant professor,
Department of philosophy, S.M. College, Bhagalpur, TMBU.

Corresponding Author :

Dr. Sumit kumar
sr. Assistant professor,
Department of philosophy, S.M. College, Bhagalpur, TMBU.

न्याय दर्शन में तर्क और आज की आलोचनात्मक सोच

सारांश : न्याय दर्शन प्राचीन भारतीय दार्शनिक परंपरा में तर्कशास्त्र और ज्ञानमीमांसा का प्रतिष्ठित विद्यालय है, जिसकी नींव गौतम ऋषि द्वारा रचित न्यायसूत्र में है। यह दर्शन प्रमाण (ज्ञान के साधन) और तर्क के माध्यम से सत्य की खोज पर बल देता है। वर्तमान युग में "आलोचनात्मक सोच" या समालोचनात्मक चिंतन का महत्व निरंतर बढ़ रहा है – ज्ञान के विभिन्न स्रोतों का विश्लेषण, तर्कों का मूल्यांकन तथा निष्कर्षों की विवेचना करना आज के शिक्षा और शोध का अभिन्न अंग बन चुका है। प्रस्तुत शोध पत्र में न्याय दर्शन के तर्क सिद्धांत और आधुनिक आलोचनात्मक सोच के बीच गहन संबंधों को दार्शनिक दृष्टिकोण से विश्लेषित किया गया है। इसमें न्याय के मूल ग्रंथों से उद्धरण लेकर उनके आधुनिक संदर्भ में निहित अर्थ पर चर्चा की गई है। अध्ययन से पता चलता है कि न्याय दर्शन में विकसित तार्किक उपकरण – जैसे प्रमाणों का सिद्धांत, अनुमान की पंचावयवी पद्धति, तथा वाद-विवाद की नीति – आज की आलोचनात्मक सोच को एक संरचनात्मक आधार और नैतिक दिशा प्रदान कर सकते हैं। अतः यह शोध न्याय दर्शन की तर्कप्रणाली को आधुनिक संदर्भ में पुनर्परिभाषित करते हुए दर्शाता है कि किस प्रकार प्राचीन भारतीय तर्क परंपरा समकालीन विचार-विमर्श और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं को समृद्ध कर सकती है।

मुख्य शब्द : न्याय दर्शन, तर्कशास्त्र, आलोचनात्मक सोच, ज्ञानमीमांसा, वाद-विद्या।

1. परिचय : मनुष्य की विचार-प्रक्रिया में तर्क (लॉजिक) एक मूलभूत उपकरण है जो सही-गलत का भेद कर सत्य तक पहुँचने में सहायक होता है। दार्शनिक चिंतन का इतिहास बताता है कि प्रत्येक सभ्यता ने तर्क और विमर्श की परंपराओं का विकास किया। प्राचीन भारत में न्याय दर्शन ने तर्कशास्त्र को एक सुव्यवस्थित रूप प्रदान किया। न्याय

दर्शन का प्रमुख ग्रंथ न्यायसूत्र (लगभग 2री शताब्दी) तार्किक चिन्तन और ज्ञान के स्रोतों पर केन्द्रित है। इसमें सोलह प्रमुख विषयों का उल्लेख है, जिनमें प्रमाण (ज्ञान के साधन), प्रमेय (ज्ञेय वस्तु), संशय (संदेह), प्रयोजन (उद्देश्य), दृष्टांत (उदाहरण), सिद्धांत (स्थापित सिद्धांत), अवयव (तर्क के अवयव), तर्क (द्वंद्वात्मक अनुमान), निर्णय (निष्कर्ष), वाद (सत्य-उद्देश्योन्मुखी संवाद), जल्प (विरोध के लिए विवाद), वितंडा (खंडन मात्र के लिए वाद), हेत्वाभास (कूटयुक्ति या तर्क-दोष), छल (कुटिल भ्रम), जाति (विविध कुतर्क) तथा निग्रहस्थान (पराजय के बिंदु) शामिल हैं (गौतम, 1925)। इन सोलह पदार्थों में न्याय के तर्कशास्त्र की पूरी रूपरेखा निहित है।

दूसरी ओर, "आलोचनात्मक सोच" आधुनिक अवधारणा है जो 20वीं सदी से शैक्षिक और व्यावसायिक क्षेत्रों में व्यापक रूप से प्रयुक्त हो रही है। समालोचनात्मक चिंतन का अर्थ है किसी समस्या, विषय या तर्क को गहराई से विश्लेषण करने की प्रवृत्ति – इसमें व्यक्ति तथ्यों और तर्कों का तार्किक परीक्षण करता है, उनकी वैधता परखता है और निष्पक्ष निष्कर्ष तक पहुँचता है। आज सूचना के युग में, जहाँ हमें अपार जानकारियाँ और मतों का सामना करना पड़ता है, आलोचनात्मक सोच एक अनिवार्य कौशल बन गया है (एनिस, 2011)। यह केवल तर्क-कौशल ही नहीं बल्कि सोचने की एक आदत है जो हमें पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाने में सक्षम बनाती है (सिगेल, 1988)।

उपस्थित शोध पत्र का उद्देश्य न्याय दर्शन में प्रतिपादित तर्क-पद्धति तथा आधुनिक आलोच-नात्मक सोच के बीच सम्बन्धों का परीक्षण करना है। भूमिका में हमने संक्षेप में दोनों की पृष्ठभूमि देखी। आगे के अनुभागों में पहले न्याय दर्शन की तर्क सम्बन्धी शिक्षाओं का विवेचन होगा, फिर आज की आलोचनात्मक सोच की अवधारणा पर चर्चा, तत्पश्चात दोनों के अंतर्संबंधों का विश्लेषण किया जाएगा। अध्ययन हेतु प्रामाणिक ग्रंथों, शोध-पत्रों एवं प्राचीन टिप्पणियों का सहारा लिया गया है, जिससे विषय का गहन एवं प्रमाणिक निरूपण हो सके।

2. न्याय दर्शन में तर्क की अवधारणा : न्याय दर्शन में तर्क (तर्कशक्ति) को ज्ञान प्राप्ति और सत्यनिर्णय का प्रधान साधन माना गया है। न्यायसूत्र के प्रारंभ में ही चार प्रमुख प्रमाणों को मान्यता दी गई है: "प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि" – अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द ये चार ज्ञान के प्रमाण (वैध साधन) हैं। इसमें प्रत्यक्ष ज्ञान इंद्रिय व मन के संयोजन से उत्पन्न स्पष्ट अनुभूति है, अनुमान तर्क के आधार पर अज्ञात का ज्ञान है, उपमान तुलना द्वारा ज्ञान है, तथा शब्द विश्वसनीय वचन (विशेषकर वेद-वचन) द्वारा ज्ञान है (चटर्जी & दत्ता, 1984)। इन प्रमाणों के द्वारा न्यायशास्त्र यह स्थापित करता है कि सही ज्ञान वही है जो प्रमाणजन्य हो – अन्यथा नहीं। किसी मत की सत्यता के लिए प्रमाणों द्वारा उसकी पुष्टि आवश्यक है।

न्यायशास्त्र में तर्क का स्थान और भी विशिष्ट है। न्यायसूत्र में कहा गया है: "तर्कः संशयिकार्थविनिश्चयार्थः" – अर्थात संशय की स्थिति में सत्य निर्णयन हेतु तर्क का प्रयोग किया जाता है। संदेह या विरोधाभासी मतों के बीच तर्क द्वारा ही निष्कर्ष तक पहुँचा जा सकता है। वात्स्यायन (न्यायभाष्यकार) तर्क की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि तर्क स्वतंत्र प्रमाण नहीं है बल्कि यह "प्रमाणानुग्राहक" – प्रमाणों का सहायक है। उनके मत में तर्क का उपयोग प्रामाणिक ज्ञान को पुष्ट करने और विरोधी अनुमानों की असंगतियों को उजागर करने हेतु होता है। तर्क स्वयं नई वस्तु को सिद्ध नहीं करता, बल्कि प्रमाणजन्य सिद्धांतों को व्यवस्थित ढंग से जाँचने का माध्यम प्रदान करता है। उदाहरणार्थ, आत्मा के विषय में दो परस्पर विरोधी धारणाओं पर विचार करें – एक मत कहता है आत्मा नित्य है, दूसरा कहता है आत्मा क्षणभंगुर है। ऐसी स्थिति में न्यायवादी तर्क का सहारा लेकर देखेगा कि कौन-सा मत सुव्यवस्थित सिद्धांतों के अनुकूल है। यदि आत्मा

क्षणभंगुर हो तो कर्मफल और नैतिक उत्तरदायित्व जैसी मान्यताएँ निरर्थक हो जाएंगी – यह तर्क उस मत की एक आलोचना प्रस्तुत करता है। इस प्रकार तर्क के माध्यम से असंगत परिणामों की ओर ध्यान दिलाकर न्यायशास्त्र संदेह का निवारण करता है और सत्य मत की ओर बुद्धि को प्रवृत्त करता है।

न्याय दर्शन ने तर्कपूर्ण विचार की संरचना को भी विश्लेषित किया है। न्यायवादी केवल निष्कर्ष (थीसिस) तक ही सीमित नहीं रहते, बल्कि तर्क के अवयवों को पाँच चरणों में विभाजित करते हैं, जिसे पञ्चावयव तर्क कहते हैं। ये पाँच अवयव हैं – (1) प्रतिज्ञा: स्थापित करने योग्य कथन (जैसे: "परवत में अग्नि है"), (2) हेतु: उस कथन का तर्क/कारण ("क्योंकि वहाँ धुआँ है"), (3) उदाहरण: साधारण स्वीकार्य उदाहरण जो हेतु को पुष्ट करे ("जहाँ-जहाँ धुआँ होता है वहाँ आग होती है, जैसे रसोईघर"), (4) उपनय: उदाहरण का प्रस्तुत प्रसंग पर अनुमिति ("परवत पर धुआँ दिखाई दे रहा है जो रसोईघर के समान ही है"), (5) निगमन: उपसंहार जिसमें निष्कर्ष की पुनर्पुष्टि होती है ("अतः परवत में निश्चय ही अग्नि है")। इस प्रकार न्याय का तर्क एक तार्किक अनुक्रम में आगे बढ़ता है जिसमें किसी दावे के समर्थन में कारण दिया जाता है, उदाहरण द्वारा उसे साधारण नियम से जोड़ा जाता है और फिर विशेष प्रसंग में लागू किया जाता है (भट्टाचार्य, 2003)। यह विस्तृत तर्क-विधि आधुनिक तर्कशास्त्र के त्रिस्तरीय निष्कर्ष से अधिक चरणबद्ध है, किंतु उद्देश्य दोनों का सत्य तक पहुँचना ही है। न्याय के इस पंचावयवी तर्क मॉडल द्वारा विचारक अपनी स्वयं की तर्क-प्रक्रिया के प्रति सचेत होता है और चरण-दर-चरण अपने निष्कर्ष की वैधता परखे जाने योग्य बनाता है।

न्याय दर्शन की एक और महत्वपूर्ण देन है हेत्वाभास अर्थात तर्क में होने वाले दोषों का विशद विश्लेषण। न्यायशास्त्र ने विभिन्न प्रकार की मिथ्या युक्तियों को पहचाना है, जैसे (1) साध्यसम (असंगत हेतु) – जहां कारण और निष्कर्ष में व्याप्ति संबंध नहीं होता; (2) विरुद्ध हेतु – जहाँ कारण प्रतिपाद्य मत के विपरीत सिद्ध करता है; (3) अपर्याप्त हेतु – जहाँ कारण पर्याप्त व्यापक नहीं (या अति विशेष) है; (4) सदृश हेतु – जहाँ गलत समानता के आधार पर निष्कर्ष निकाला जाता है; (5) कालत्यागपक्ष – समय या प्रसंग भेद से कारण-अकारण हो जाना, आदि (चटर्जी, 1939)। इन तर्क-दोषों की पहचान करके न्यायी यह सुनिश्चित करता है कि विवाद में गलत तर्कों के कारण सत्य से विमुख न होना पड़े। यह प्रणाली आज की आलोचनात्मक सोच में अनौपचारिक भ्रांतियों की पहचान जैसी ही है – जैसे आधुनिक तर्कशास्त्र में व्यक्ति के विरुद्ध, द्वंद्वात्मक भ्रांति, पूर्वाग्रह इत्यादि की चर्चा होती है, ठीक उसी प्रकार न्याय में भी तर्क की त्रुटियों को वर्गीकृत किया गया है (मटिलाल, 1998)। न्याय दर्शन का मत है कि शुद्ध विचार के लिए अशुद्ध तर्कों का त्याग आवश्यक है। उचित तर्क वही है जो प्रमाणसम्मत हो, उद्देश्यपूर्ण हो और जो विवाद को सुलझाने में सहायक हो।

3. आज की आलोचनात्मक सोच: परिप्रेक्ष्य : आधुनिक युग में "आलोचनात्मक सोच" को एक बहु-आयामी बौद्धिक योग्यता के रूप में देखा जाता है। इसे सामान्यतः इस रूप में परिभाषित किया जाता है कि किसी भी विषय या समस्या पर स्पष्ट, तर्कसंगत और निष्पक्ष दृष्टि से विचार करना, उपलब्ध सूचनाओं और तर्कों का मूल्यांकन करना, तथा तार्किक परिणाम तक पहुँचना आलोचनात्मक चिंतन है (एनिस, 2011)। आलोचनात्मक सोच में व्यक्ति न सिर्फ प्राप्त जानकारी को स्वीकार या अस्वीकार करता है, बल्कि क्यों और कैसे जैसे प्रश्नों के माध्यम से गहरे स्तर पर विश्लेषण करता है। इसमें कई कौशल सम्मिलित हैं: जैसे- समस्याओं को पहचानना और स्पष्ट करना, प्रमाणों का आकलन करना, तर्क में निहित धारणाओं को पहचानना, वैकल्पिक दृष्टिकोणों पर विचार करना, तथा निष्कर्ष निकालकर उसे उचित औचित्य प्रदान करना (सिगेल, 1988)। एक कुशल आलोचनात्मक विचारक अपने पूर्वाग्रहों को अलग रखते हुए वस्तुनिष्ठ

ढंग से तर्क-वितर्क करता है और जरूरत पड़ने पर अपने मत को भी संशोधित करने को तैयार रहता है।

आज की शिक्षा-प्रणाली में आलोचनात्मक सोच को बढ़ावा देने पर विशेष ज़ोर दिया जा रहा है। अत्याधुनिक सूचना-प्रवाह के दौर में, सोशल मीडिया से लेकर समाचार माध्यमों तक, विभिन्न स्तरों पर तर्कहीनता, मिथ्या सूचना और पक्षपाती विचारधाराएँ भी प्रचारित होती रहती हैं। ऐसी स्थिति में आलोचनात्मक चिंतन व्यक्ति को सत्य को असत्य से अलग करने, तर्कसंगत संवाद स्थापित करने और सुविचारित निर्णय लेने में सक्षम बनाता है (मोहंती, 1992)। पश्चिमी शैक्षिक पद्धतियों में आलोचनात्मक सोच को प्रायः अरस्तू के तर्कशास्त्र, औपचारिक युक्तिविधान और वैज्ञानिक पद्धति से जोड़ा गया है। किन्तु समकालीन विचारक यह महसूस कर रहे हैं कि आलोचनात्मक सोच की अवधारणा को वैश्विक और बहुसांस्कृतिक दृष्टिकोण से फिर परिभाषित किया जाए (रघुरामराजू, 2013)। इसी संदर्भ में भारतीय तर्कपरंपरा विशेषकर न्याय दर्शन में निहित तर्कशीलता अब ध्यान आकर्षित कर रही है (गोजिया, 2025)। आलोचनात्मक सोच का लक्ष्य केवल बौद्धिक कौशल विकसित करना नहीं, बल्कि एक स्वस्थ बौद्धिक दृष्टिकोण अपनाना भी है – जिसमें बौद्धिक विनम्रता, खुलेपन, तटस्थता और सत्यनिष्ठा जैसे गुण शामिल हैं (सिगेल, 1988)। आधुनिक दार्शनिक इस बात पर जोर देते हैं कि एक आलोचनात्मक विचारक को न केवल तार्किक होना चाहिए, बल्कि उसे अपने तर्क के नैतिक-सामाजिक आयामों के प्रति भी सजग होना चाहिए। इस बिन्दु पर न्याय दर्शन की कुछ शिक्षाएँ विशेष रूप से प्रासंगिक हैं, जिनकी चर्चा हम आगे करेंगे।

4. न्याय दर्शन और आलोचनात्मक सोच का तुलनात्मक विश्लेषण : प्राचीन न्याय तर्कशास्त्र और आधुनिक आलोचनात्मक सोच में कई समानताएँ हैं, साथ ही कुछ दृष्टिभेद भी। दोनों का केन्द्रीय उद्देश्य है – मानव को यथार्थ एवं तर्कपूर्ण निर्णय तक पहुँचने में सक्षम बनाना। यहाँ हम कुछ प्रमुख बिंदुओं पर न्याय दर्शन और आलोचनात्मक चिंतन के तुलनात्मक पहलुओं को विश्लेषित करेंगे:

1. ज्ञान के साधन (प्रमाण) और साक्ष्य आधारित निष्कर्ष: न्याय दर्शन में ज्ञानमीमांसा का अत्यंत महत्व है। न्यायशास्त्र कहता है कि सही ज्ञान प्रमाण से उत्पन्न होता है और प्रमाणों की संख्या चार है – प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द। आधुनिक आलोचनात्मक सोच भी ज़ोर देती है कि निष्कर्ष हमेशा ठोस प्रमाणों और तर्क पर आधारित होने चाहिए। फर्क बस इतना है कि न्याय ने शब्द (श्रुति/विश्वसनीय वचन) को भी प्रमाण माना, जबकि आधुनिक विचार में लौकिक संदर्भ में शब्द प्रमाण का स्थान विश्वसनीय स्रोतों या विशेषज्ञ मतों के प्रमाण के रूप में लिया जा सकता है। फिर भी, दोनों ही परिप्रेक्ष्यों में सत्य के लिए अनुभवजन्य एवं तर्कसंगत साक्ष्यों की अनिवार्यता स्वीकारी जाती है (फिलिप्स, 2012)। उदाहरण के लिए, न्याय का प्रत्यक्ष और अनुमान आधुनिक वैज्ञानिक अवलोकन और तर्कपद्धति के समतुल्य हैं। इसी प्रकार न्याय का प्रमेय (ज्ञेय वस्तु) आधुनिक "परिकल्पना या जाँच का विषय" जैसा है। संक्षेप में, ज्ञान के सत्यापन हेतु प्रमाणों पर बल देना न्याय और आधुनिक आलोचनात्मक चिंतन – दोनों का साझा सिद्धांत है।

2. तार्किक संरचना और अन्वेषण प्रक्रिया: न्याय के पञ्चावयवी तर्क और आधुनिक तर्कशास्त्र की प्रक्रिया में संरचनात्मक समानता पाई जाती है। जहाँ न्याय में तार्किक विचार प्रतिज्ञा-हेतु-दृष्टांत-उपनय-निगमन की क्रमिक सीढ़ियों से होकर लक्ष्य तक पहुँचता है, वहीं आधुनिक आलोचनात्मक सोच में हम थीसिस-एविडेन्स-एग्ज़ाम्पल-एनालिसिस-कनक्लूज़न जैसे चरण देख सकते हैं (गनेरी, 2011)। न्याय की तर्क-पद्धति एक मेधा-प्रबंधन दृष्टिकोण प्रदान करती है जिसमें विचारक को पता रहता है कि वह तर्क के किस चरण में है और आगे क्या करना है। इसी प्रकार, आलोचनात्मक सोच में जोर दिया जाता है कि व्यक्ति

अपने सोचने की प्रक्रिया पर नज़र रखे – वह किस आधार पर निष्कर्ष निकाल रहा है, उसके तर्क की कमजोर कड़ियाँ कहाँ हो सकती हैं, इत्यादि। उदाहरण के तौर पर, यदि कोई विद्यार्थी तर्क प्रस्तुत कर रहा है तो न्याय के अवयवों के समान वह भी जाने-अनजाने अपने तर्क के अंग प्रस्तुत करता है: वह दावा (थीसिस) रखता है, उसके समर्थन में तर्क (रीज़न) देता है, उदाहरण देता है, फिर उन तर्कों को मामले पर लागू करता है और अंत में निष्कर्ष निकालता है। इस संपूर्ण प्रक्रिया के प्रति सजगता ही वास्तविक समालोचनात्मक रवैया है। न्याय दर्शन के साहित्य में ऐसे अनेक वाद-संवाद के उदाहरण हैं जहाँ तर्क की इस क्रमिक प्रक्रिया का उपयोग प्रतिद्वंद्वी दर्शन को खंडित करने या अपने सिद्धांत को स्थापित करने में किया गया है (मटिलाल, 1986)। उदाहरण के लिए, प्राचीन नैयायिक गुणादिसमुदाय (संयुक्त पदार्थ) के अस्तित्व पर बौद्ध क्षणिकवादियों से वाद-विवाद करते समय इसी क्रमिक तर्क प्रणाली का अनुसरण करते थे – पहले प्रतिज्ञा कि "संयोगजन्य समष्टि वस्तुतः होती है", फिर हेतु कि "क्योंकि उसके गुणों का संगठन देखा जाता है", दृष्टांत में "जैसे रथ के अंग मिलकर रथ की सत्ता बनाते हैं", और क्रमशः निष्कर्ष तक पहुँचते थे। यह क्रमबद्ध पद्धति आधुनिक तर्क के संरचित तर्क-विचार कौशल से मेल खाती है जो जटिल समस्याओं के चरणबद्ध विश्लेषण को प्रोत्साहित करती है (भट्टाचार्य, 2003)। इस प्रकार, न्याय की तार्किक संरचना आज की आलोचनात्मक सोच को एक रूपरेखा प्रदान करती है जिसमें सोपानबद्ध चिंतन द्वारा किसी भी मुद्दे का गहन विश्लेषण संभव है।

3. विवाद का उद्देश्य और वाद-विवाद की नैतिकता: न्याय दर्शन में तर्क का अंतिम ध्येय सत्य की स्थापना और मिथ्या का खंडन है, न कि मात्र बहस जीतना। न्यायसूत्र में वाद (संवाद) को परिभाषित किया गया – "वादः तत्त्वबोधार्थः" यानी वाद का लक्ष्य तत्व (सत्य) का बोध करना है। इसके विपरीत, जल्प और वितंडा ऐसे वाद-विवाद हैं जिनमें लक्ष्य सत्य नहीं रहता, बल्कि प्रतिपक्षी को पराजित करना या केवल विरोध करना होता है। नैयायिकों ने सदैव **वाद** को मूल्य दिया है जिसमें दोनों पक्ष नियमबद्ध तरीके से तर्क करते हैं और उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति होता है। आज के समय में आलोचनात्मक सोच को भी केवल वाद-विवाद में निपुण होना नहीं, बल्कि तर्क-विमर्श को एक सहयोगी प्रक्रिया बनाना अपेक्षित है। वर्तमान सार्वजनिक विमर्श में अकसर बहसें प्रतिद्वंद्विता का रूप ले लेती हैं, जहाँ हर पक्ष सिर्फ स्वयं को सही साबित करने पर तुला रहता है। ऐसी विरोधी बहस ज्ञान या समाधान तक कम ही पहुँचाती है। न्याय का वाद-विचार इस प्रवृत्ति के विरुद्ध एक आदर्श प्रस्तुत करता है – जहां संवाद का मकसद मिल-जुलकर सत्य को उजागर करना है, न कि किसी की हार-जीत तय करना। आधुनिक शिक्षाशास्त्री भी तर्क-शिक्षा में इसी सहयोगी भावना को बढ़ावा देने की बात कर रहे हैं कि बहस को डायलॉग की तरह लिया जाए न कि डिबेट की तरह (गोजिया, 2025)। न्याय दर्शन का वाद-दर्शन स्पष्ट नियमों से बंधा था – जैसे कोई छल-कपट, व्यक्तिविद्वेष या विषयांतर नहीं होना चाहिए; विरोधी के तर्क को यथावत सुनना और तर्कसंगत उत्तर देना चाहिए; निराधार आपत्ति या सिर्फ वाक्चातुर्य नहीं दिखाना चाहिए (अन्नंभट्ट, 2010)। ये नियम आज के आलोचनात्मक विमर्श के नैतिक दिशा-निर्देश बन सकते हैं, जहाँ हमें स्वस्थ बातचीत, सक्रिय श्रवण (एक्टिव लिसनिंग) और तर्कों के निष्पक्ष मूल्यांकन की जरूरत है। इस प्रकार, न्याय दर्शन हमें सिखाता है कि तर्क-वितर्क का चरम लक्ष्य व्यक्तिगत प्रामाणिकता या विजय न होकर सामूहिक सत्य-अन्वेषण होना चाहिए – यह शिक्षा आधुनिक आलोचनात्मक सोच के विकास के लिए अत्यंत मूल्यवान है।

4. तर्क और निष्कर्ष की सीमाएँ: न्याय दर्शन एवं आधुनिक समालोचनात्मक सोच, दोनों स्वीकारते हैं कि मानव तर्कणा की एक सीमा है और युक्ति के

दायरे के बाहर भी सत्य के कुछ पहलू हो सकते हैं। न्याय शास्त्र में मोक्ष की प्राप्ति को परम लक्ष्य माना गया है, जिसके लिए सही ज्ञान आवश्यक है (गौतम, 1925)। परन्तु न्याय यह भी मानता है कि कुछ तत्व (जैसे आत्मा का बोध) प्रत्यक्ष या सामान्य तर्क से नहीं, अपितु योगीय प्रत्यक्ष या शास्त्र के प्रमाण से ही ग्रहण किये जा सकते हैं। इसी तरह आधुनिक दौर में कुछ विचारक इंगित करते हैं कि हर चीज़ को तर्क के एक साँचे में नहीं ढाला जा सकता; सांस्कृतिक, आध्यात्मिक या मानवीय अनुभवों के स्तर पर तर्कातीत आयाम भी हैं (मोहंती, 1992)। आलोचनात्मक सोच का कार्य वहाँ समाप्त हो जाता है जहाँ प्रमाण और तर्क काम करना बंद कर दें, परंतु एक खुले विचार वाला व्यक्ति यह मानकर चलता है कि संभावनाएँ शेष रह सकती हैं। न्याय दर्शन में अनुमान से भी बढ़कर तर्क को एक प्रकार की कल्पनात्मक परीक्षण विधि कहा गया – जो निश्चित ज्ञान न देकर बुद्धि को दिशा मात्र दिखाती है (गनेरी, 2001)। उदाहरणस्वरूप, ईश्वर के अस्तित्व के प्रश्न पर न्याय के कुछ मतानुयायी तर्क द्वारा ईश्वर की आवश्यकता प्रतिपादित करते हैं, पर अन्ततोगत्वा उसे शब्द (वेद) या प्रत्यक्ष योगानुभूति पर छोड़ देते हैं। यह दर्शाता है कि तर्क महत्त्वपूर्ण होते हुए भी संपूर्ण नहीं है। आधुनिक विमर्श में भी आलोचनात्मक चिंतन के साथ रचनात्मक चिंतन और खुले विचार की बात की जाती है, जो बताता है कि मानव बुद्धि को गलैपगत नियमों के अतिरिक्त नवोन्मेष और उदारता की भी दरकार है (रघुरामराजू, 2013)। इस चेतना के माध्यम से न्याय दर्शन और आलोचनात्मक सोच दोनों ही हमें आगाह करते हैं कि तर्कशीलता का अर्थ हठधर्मिता नहीं, बल्कि एक संतुलित विवेकशीलता है। हमें तर्क की शक्ति के साथ-साथ उसकी सीमाओं का भी ज्ञान होना चाहिए – यही वास्तविक बौद्धिक परिपक्वता है।

उपरोक्त बिंदुओं के आलोक में स्पष्ट होता है कि न्याय दर्शन और आधुनिक आलोचनात्मक सोच भिन्न कालखंडों में विकसित हुए होने पर भी बौद्धिक दृष्टि से समान ध्येय रखते हैं। न्याय दर्शन के सिद्धांत, उपाय और चेतावनी आधुनिक समालोचनात्मक चिंतन को न केवल एक संरचनात्मक आधार प्रदान करते हैं, बल्कि उसे एक नैतिक-दार्शनिक गहराई भी देते हैं। अब प्रश्न उठता है कि इन पुरातन सिद्धांतों को आज की शिक्षा एवं चिंतन-प्रक्रिया में कैसे समाहित किया जा सकता है। अगले भाग में हम संक्षेप में न्याय दर्शन की प्रासंगिकता पर समकालीन संदर्भ में विचार करेंगे।

5. समकालीन संदर्भ में न्यायीय तर्क की प्रासंगिकता : ज्ञान-विज्ञान के वर्तमान युग में, जहाँ दुनिया भर में विचारों का अद्भुत विस्तार हुआ है, भारतीय तर्क परंपरा की अंतर्दृष्टियाँ एक मूल्यवान संसाधन सिद्ध हो सकती हैं। न्याय दर्शन का अध्ययन केवल ऐतिहासिक या सांस्कृतिक महत्व का विषय नहीं है, बल्कि यह आज के विद्वानों के लिए व्यावहारिक महत्व भी रखता है (गनेरी, 2011)। विशेषतः शिक्षा और विमर्श के क्षेत्र में न्याय के सिद्धांतों को प्रयोग में लाया जा सकता है:

- **शिक्षा में तर्कशास्त्र का पाठ्यक्रम:** आधुनिक विश्वविद्यालयों में लॉजिक और क्रिटिकल थिंकिंग पाठ्यक्रम प्रायः पश्चिमी प्रतीकों और उदाहरणों पर आधारित होते हैं। यदि इनमें न्याय तर्कशास्त्र के सिद्धांतों को शामिल किया जाए तो छात्रों को तर्क की एक वैकल्पिक परंपरा से परिचय मिलेगा। उदाहरण के तौर पर, तर्क के पंचावयव मॉडल को पढ़ाकर छात्रों में चरणबद्ध तर्क-विकास का कौशल संवर्धित किया जा सकता है। कुछ अध्ययनों ने सुझाव दिया है कि न्याय-विधि से प्रशिक्षित विद्यार्थी तर्क प्रक्रिया के प्रति अधिक सजग होते हैं और उनमें आत्मचिंतन की प्रवृत्ति मजबूत होती है। इस प्रकार, न्याय दर्शन शिक्षण द्वारा अधिक **समग्र आलोचनात्मक चिंतक** तैयार किए जा सकते हैं, जो तार्किक कौशल के साथ-साथ बौद्धिक विनम्रता और सत्यनिष्ठा को भी महत्व दें।

- **बहुसांस्कृतिक दृष्टिकोण एवं बौद्धिक विमर्श:** न्याय दर्शन का समावेश आलोचनात्मक सोच को एक बहुलवादी परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है। यह पश्चिम-केन्द्रित तर्कशिक्षा में एक संतुलन लाता है जिसे कुछ विचारक "ज्ञान के उपनिवेशीकरण" की आलोचना के रूप में देखते हैं (मोहंती, 1992)। यदि छात्र अरस्तू, मिल आदि के साथ-साथ अक्षपाद गौतम, वात्स्यायन जैसे तर्कविदों के सिद्धांत भी पढ़ें, तो उन्हें यह बोध होगा कि तार्किक खोज किसी एक संस्कृति की बपौती नहीं, बल्कि मानव सभ्यता की साझी विरासत है (रघुरामराजू, 2013)। यह दृष्टिकोण बौद्धिक विनिमय को समृद्ध करेगा और छात्रों में वैश्विक पैमाने पर तर्कशीलता के प्रति सम्मान पैदा करेगा।
- **विवाद-संस्कृति में सुधार:** आज राजनीतिक और सामाजिक विमर्श में बहस का स्तर अकसर नीचे गिर जाता है, जहां व्यक्ति मुद्दों पर कम और व्यक्तियों पर अधिक आक्रमण करते हैं। न्याय दर्शन की वाद परंपरा एक **आचारसंहिता** की मांग करती है – शास्त्रार्थ का भी एक नैतिक आयाम है। यदि न्याय की वाद-विद्या के नियम (जैसे व्यक्तिगत आक्षेप न करना, कुतर्क से बचना, पराजय स्वीकार करना जब तर्क समाप्त हो जाएं आदि) को आधुनिक डिबेट कल्चर में लागू किया जाए, तो बहसें अधिक सार्थक और परिणामदायी बन सकती हैं (मटिलाल, 1998)। वास्तव में, न्याय दर्शन हमें सिखाता है कि बहस का उद्देश्य समस्या का समाधान और सत्य का अन्वेषण होना चाहिए, न कि केवल अहं तृप्ति या विरोधी को नीचा दिखाना। यह शिक्षा पत्रकारों, राजनेताओं और सामाजिक मीडिया पर सक्रिय युवाओं – सभी के लिए प्रासंगिक है।
- **विज्ञान और तकनीक में निर्णय क्षमता:** न्याय तर्कशास्त्र की पद्धति निर्णय लेने की वैज्ञानिक प्रक्रिया में भी सहायक हो सकती है। आज के डेटा-प्रचुर वातावरण में डाटा एनालिटिक्स और विश्लेषणात्मक निर्णय की चर्चा होती है। इसमें भी न्याय के तार्किक अवयव लागू होते हैं – तथ्य (डेटा) प्रत्यक्ष के समान हैं, उनसे निकाले गए रुझान अनुमान के समान, उन पर आधारित उदाहरण/मॉडल दृष्टांत के तुल्य, और निर्णायक रिपोर्ट निगमन के समान। यदि डाटा वैज्ञानिक या नीति-निर्माता न्याय के तर्क सिद्धांत से अवगत हों तो वे अपने निर्णयों की आधारशिला अधिक स्पष्टता से रख पाएंगे और निर्णय प्रक्रिया की सीमाएँ भी पहचान सकेंगे (फिलिप्स, 2012)। उदाहरण के लिए, किसी नीति के समर्थन में प्रमाण इकट्ठे करते समय वे पूछ सकेंगे: "क्या हमारे आधार (हेतु) व्यापक हैं? क्या हमारे उदाहरण प्रासंगिक हैं? कहीं कोई तर्क-दोष तो नहीं?" – ये प्रश्न न्यायवाद से ही प्रेरणा लेते हैं।

अंततः, समकालीन विश्व में न्याय दर्शन की प्रासंगिकता इस बात में है कि यह हमें विचार की संस्कृति को गहरा करने का अवसर देता है। न्याय दर्शन आधुनिक आलोचनात्मक सोच को न सिर्फ तकनीकी कौशल, बल्कि एक दार्शनिक आधार भी प्रदान करता है – जो बताता है कि तर्क का प्रयोग नैतिक जिम्मेदारी के साथ कैसे किया जाए। वास्तव में, जैसा एक अध्ययन में कहा गया है, न्याय दर्शन के अवलंबन से हम "तार्किक दक्षता के साथ ज्ञानमीमांसक विनम्रता, निष्पक्ष संवाद-भावना और सत्यान्वेषण की निरंतर प्रतिज्ञा" वाले समन्वित चिंतक विकसित कर सकते हैं। यह निष्कर्ष न्याय दर्शन को आज के बौद्धिक परिदृश्य में विशेष महत्व देता है।

6. निष्कर्ष : न्याय दर्शन में तर्क और आज की आलोचनात्मक सोच के बीच गहरा नाता है। यद्यपि दोनों की उत्पत्ति भिन्न युगों और संदर्भों में हुई, परंतु उनके मूलभूत सिद्धांत समान लक्ष्यों को संजोए हुए हैं – सत्य का अन्वेषण, तर्क की शुद्धता, और विवेकपूर्ण निर्णय। इस शोध पत्र में हमने पाया कि प्राचीन न्याय

दर्शन न सिर्फ एक तार्किक प्रणाली है, बल्कि एक **बौद्धिक दृष्टिकोण** है जो ज्ञान को परखने, वाद-विवाद को मर्यादित रखने और विचारों को एक नियमबद्ध स्वतंत्रता देने पर बल देता है। न्याय के प्रमाण सिद्धांत ने हमें सिखाया कि किसी भी कथन को बिना प्रमाण स्वीकार नहीं करना चाहिए; आधुनिक आलोचनात्मक सोच भी हर दावा के पीछे प्रमाण खोजने को प्रेरित करती है। न्याय के तर्क ने दिखाया कि संशय के निराकरण और निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए सुव्यवस्थित चिंतन आवश्यक है; आज भी जटिल समस्याओं को हल करने के लिए चरणबद्ध विश्लेषण सर्वोत्तम तरीका माना जाता है। न्याय की वाद-परंपरा ने संवाद को सहयोगी साधना के रूप में स्थापित किया; समकालीन विमर्श को भी इसी सहयोगात्मक वृत्ति की ज़रूरत है, जिसमें बहसें प्रतिस्पर्धा न होकर सहभागिता हों।

इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि न्याय दर्शन की अवधारणाएँ केवल सैद्धांतिक महत्व नहीं रखतीं, बल्कि व्यावहारिक रूप से आज की शिक्षा, नीति और सामाजिक विमर्श में लागू की जा सकती हैं। भारतीय तर्कशास्त्र का समावेश आलोचनात्मक सोच को एक नया आयाम देता है – यह दर्शाता है कि तार्किक सोच मानव सभ्यता की सर्वश्रेष्ठ सामूहिक धरोहर है। इससे छात्रों और विचारकों में एक सांस्कृतिक विनम्रता भी विकसित होगी कि विश्व के भिन्न कोनों में बुद्धिजीवियों ने सत्य की खोज में कैसे-कैसे तरीकों का आविष्कार किया। न्याय जैसी परंपरा हमें सोचने के वैकल्पिक तरीके प्रदान करती है, जो वर्तमान समय में और भी महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं जब हमें बहुआयामी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

अंत में, यह कहा जा सकता है कि न्याय दर्शन और आधुनिक आलोचनात्मक सोच एक-दूसरे के प्राकृतिक सहयोगी हैं। न्याय दर्शन, आधुनिक बुद्धिजीवी को स्मरण कराता है कि तर्क केवल यांत्रिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक नैतिक अनुशासन भी है – जिसमें सत्यनिष्ठा, निष्पक्षता और संवादशीलता का समन्वय आवश्यक है। वहीं आलोचनात्मक सोच न्याय दर्शन को एक जीवंत मंच देती है जहाँ उसकी प्राचीन शिक्षाएँ नये सन्दर्भों में जीवंत होती हैं। इस संगम से जो बौद्धिक संस्कृति विकसित होगी, वह निस्संदेह अधिक विवेकशील, अधिक संतुलित और अधिक सत्यनिष्ठ होगी। इस शोध का निष्कर्ष है कि न्याय दर्शन की तर्कपरक दृष्टि आज की आलोचनात्मक सोच को समृद्ध कर सकती है और हमें तर्क एवं विचार की एक ऐसी परंपरा से जोड़ सकती है जो युगों से मानवता को विवेक का पाठ पढ़ाती आ रही है।

संदर्भ सूची :

1. Annambhatta. Tarka-Samgraha. translator V. N. Jha, Chinmaya International Foundation, 2010.
2. Bhattacharya, G. (translator). The Nyāya-Sūtras of Gautama. Motilal Banarsidas, 2003.
3. Chatterjee, Satischandra, and Dhirendramohan Datta. An Introduction to Indian Philosophy. University of Calcutta, 1984.
4. Chatterjee, Satischandra. The Nyāya Theory of Knowledge. Calcutta University, 1939.
5. Ennis, Robert H. The Nature of Critical Thinking: An Outline of Critical Thinking Dispositions and Abilities. University of Illinois, 2011.
6. Ganeri, Jonardon. The Lost Age of Reason: Philosophy in Early Modern India 1450–1700. Oxford University Press, 2011.

7. Ganeri, Jonardon. Philosophy in Classical India: The Proper Work of Reason. routledge, 2001.
8. Gautama (Axiopod). Nyāyadarśanam (Nyayasutra, including Vatsyayana-Bhashya). Editor: Acharya Dhundhiraj Shastri, Chaukhamba Vidya Bhavan (Vidya Vilas Press), Varanasi, 1925.
9. Gojiya, Mehul V. "Nyāya and Critical Thinking: Revitalizing Rational Debate in Contemporary Education." International Education and Research Journal, vol. 11, no. 12, 2025, pp. 18–19.
10. Matilal, Bimal Krishna. The Character of Logic in India. Editor J. Ganeri and H. Tiwari, Oxford University Press, 1998.
11. Matilal, Bimal Krishna. Perception: An Essay on Classical Indian Theories of Knowledge. Clarendon Press, 1986.
12. Mohanty, Jitendra N. Reason and Tradition in Indian Thought. Clarendon Press, 1992.
13. Phillips, Stephen H. Epistemology in Classical India: The Knowledge Sources of the Nyāya School. routledge, 2012.
14. Raghuramaraju, Anjan. Philosophy and India: Ancestors, Outsiders, and Predecessors. Oxford University Press, 2013.
15. Siegel, Harvey. Educating Reason: Rationality, Critical Thinking, and Education. routledge, 1988.

•